रम्भा

क्षीरनिधि के फेन से निर्मित हुई सी देह ।
लोक अनुपम कान्ति चिर लावण्य का जो गेह ।
नेत्र ज्यों देवापगा की अरुण चंचल मीन ।
देवतरु कनकाभ फल से दृढ पयोधर पीन । 1 ।

वदन मानो सुधाकर रस सत्व से है जात।
कल्पतरु कलिका रसोत्थित से अधर प्रतिभात।
अपर रति सी कान्तिनिर्झर सुरभि सा संचार।
गमन मंथर कर रहा ज्यों विपुल यौवन भार । 2 ।

स्वर मधुरिमा स्रोत सुस्मिति मदन का ज्यों पाश।
भुवन मोहक श्रुति सुधा सम विशद निश्छल हास
ऋणी जिसकी तरुणता भी अरुण है शुभ आस्य।
सूत्र ज्यों सौंदर्य का जग इतर श्री बस भाष्य । 3 ।

सृष्टि सुषमा सार या मधुसिन्धु मणि अनमोल।
उर्मि ज्यों आकाश गङ्गा की सुवेगा लोल।
रम्यता सुकुमारता का परम अद्भुत मेल।
चपल विभ्रम चलाते नित चित हरण का खेल । 4 ।

देख धरिणी की तरुणियाँ भङ्गिमा नव भाव।

जान जीवन दृष्टि अभिरुचि और लोक प्रभाव।

देख दुस्तर द्वंद्व वपु केन्द्रित अभीप्सा जात।

रमणि मणि रम्भा उठी कह गूढ मन की बात । 5 ।

चली आती हूं धरा पर है कुतूहल मात्र।

अगिर में भी मान्य क्यों है मानवी सत्पात्र।

देव भी क्यों विनत होते देख गुण समुदाय।

अनुसरण क्या शक्य मुझको क्या विशेष उपाय । 6 ।

यदपि मम आवास है अमरावती के मध्य।

जहां अनुपम भव्यता सब भोग नित नव हृद्य।

किन्तु मैं हूं मानती बस मानवी को धन्य।

लभ्य है पति प्रेम जिसको चिर अपूर्व अनन्य । 7 ।

यहां सुरपति का मनोरंजन हमारा कर्म।

मात्र सत्तासीन की अनुकूलता मम धर्म।

इन्द्र पद आरूढ जो भी वही रहता प्रेय।

ताल स्वर लय गान में ही मानतीं हम श्रेय । 8 ।

जगाना रुचि भावना वर्धन अभीप्सा लोभ।

तीव्र उत्कण्ठा कुसुमशरवेदना विक्षोभ।

मात्र उद्दीपनकुशलता हमारा व्यवहार।

तृषा के उपशमन का हमको नहीं अधिकार । 9 ।

तुम्हारा है क्षेत्र विस्तृत तुम्हारा संसार।

तुम्हारे बन्धन मृदुल हैं विपुल तव अधिकार।

आदि तुम गृह स्वामिनीं हम सेविका सामान्य।

चित्त की हम चोर हैं तुम हो हृदय से मान्य । 10 ।

तुम तनूजा हो भगिनि हो प्रेयसी हो सत्य।

मनुजता की क्रोड हो तुम से सफल दाम्पत्य।

जननि तुम वात्सल्य की स्रोतस्विनी अभिराम।

तुम श्वश्रू, मातामही, प्रपितामही निष्काम । 11 ।

स्वर्ग में बस हम सभी को एक है सन्तोष।

यहां मन में नहीं आता वासना का दोष।

यहां मिलता सत्व रज का एक अद्भुत मेल।

अतः लौकिक स्थूलता तम के न चलते खेल । 12 ।

यहां सब रस हैं मनोमय भावना से भोग्य ।

तृप्ति भी भौतिक नहीं बस मनीषा के योग्य ।

मात्र दूषित दृष्टि से ही उपरिचर निष्क्रांत ।

किए वेधा ने अगिर से गिरे भू पर भ्रांत । 13 ।

कर्म में सहयोगिनीं तुम भर्तृ की समुदार ।

धर्म की सहभागिनी करतीं नियत उद्धार।

वारिणी नर को, बचातीं जगत में अपकृत्य ।

तुम न होतीं मनुज रहता भावना का भृत्य । 14 ।

एक तव सहयोग से वर्तित जगत का चक्र ।

तुम सृजन की भूमि, तव अभिमुख विनत हैं शक्र ।

भूमिका न्यूनीकरण की वेदना से अज्ञ ।

भ्रमित करने को समुद्यत नर तुम्हें दुष्प्रज्ञ । 15 ।

यदपि हम चिर यौवना बहुभोग से परिवृत्त ।

कहीं गहरी गुफा में यह चित्त है परितप्त ।

रहीं पुष्पित लता ही पायीं न सत्फल देख ।

खिल सकी वात्सल्यजा मुख पर न स्मिति रेख । 16 ।

हो न पाया स्त्रीसहज बहुभूमिका विस्तार ।

रह गया श्रृंगार तक सीमित यहां संसार ।

नृत्य गीत विभोर देवोच्चरित शंसा शब्द ।

अपसरित करते नहीं उरव्योम के घन अब्द । 17 ।

रह गईं हम तो रमणि ही तुम बनीं मणि दिव्य ।

भव्यता की मूर्ति भव में, हम निरंतर नव्य ।

सृजन आरम्भा हुईं, हम रहे रम्भा मात्र ।

तुम हृदय तक शुभ्र हम बस कांतिनिर्झर गात्र । 18 ।

भामिनि तुम हो भादि और मैं रम्भा ठहरी भांत ।

हमसे शोभित सभा सुरों की तुम से नित्य निशान्त ।

विभा हमारी सदा एक सी बहुरूपा तव कांति ।

हम उत्कंठा की प्रवर्धिका तुम से मिलती शांति । 19 ।

हम अनंगसेना सेनानी तुम अनंग से पीड़ित ।

पर कर देतीं नव जीवन को इस वसुधा पर क्रीड़ित ।

तुम ऋषि पत्नीवत तप साधन में भी परम सहायक ।

हम तप विघ्नकारिणीं बनतीं चला भंगिमा सायक । 20 ।

मात्र सुरभि झोंके सी हम हैं, तुम वाटिका मनोज्ञ ।

मनोभोग्य हम देतीं तुम शम सहित प्रणय आरोग्य ।

हमसे ईर्ष्या करती है रति, है तव सखी प्रशस्य ।

उषा अरुणिमा सी हम नभ में तुम धारिणीं सशस्य । 21 ।

हम शम्पा की झलक, अरुंधति तारा सी तुम नित्य ।

हमको नर मन मात्र तुम्हें जनकानुज पति सुविजित्य ।

हम रस का प्रसार करतीं तुम इसका सार्थक सिञ्चन ।

तुम करतीं प्रसार मानस का हम करतीं आकुञ्चन । 22 ।

मणि माणिक्य हमारे भूषण तव भूषण तप त्याग ।

रस, माधुर्य, लास्य यदि हम हैं तुम पावन अनुराग ।

जनतीं क्षण उद्वेग, कांति तव देती मोद, प्रशान्ति ।

भ्रान्ति जनन में सिद्धहस्त हम तुम हर लेतीं भ्रान्ति । 23 ।

हम विधुप्रभा तरल झीनीं सी तुम हो स्वर्णिम धूप ।

हम मृगतृष्णा सम आभासी तुम मणिप्रभा अनूप ।

कामधेनु तुम, कपट कुरंगी हम चपला शुभ वर्ण ।

तुम पोषक पयस्रोत अलंकृति हेतु मात्र हम स्वर्ण । 24 ।

गृहसारिका मधुर स्वर गुञ्जन, हम ऋतु कोकिल कूक ।

अमलोद्यम की शुभद सिद्धि तुम, हम सांवेगिक चूक ।

हम पयोधि उत्प्लावित, नीहारावृत्त, चल, हिमखण्ड ।

तुम जीवन्त प्रकृति सुषमा से संकुल द्वीप अखण्ड । 25 ।

रम्भा तरुवत मात्र स्तरित रचना पर सार न कोई ।

एक पुष्प यौवन का धारा अन्य भावना खोयी ।

सदृश समाज सुरक्षित हम हैं तुम्हें युग्म का बल है ।

है विश्वास तुम्हारा आयुध यहां रूप का छल है । 26 ।

हरसिंगार कुसुमवत अचिरा फिर भी शिव पर अर्पित ।

कर्णिकार किंशुक वत हम बस रहे वर्ण पर गर्वित ।

हम सज्जा के कुसुम समाराधन की तुम हो साधन ।

सरज नयन हैं हमें देखते पातीं तुम अभिवादन । 27 ।

पूर्णमध्य भी हम अपूर्ण हैं, तुम अपूर्ण में पूर्ण ।

हम निर्बाध, अशंक कर रहीं बाधाएं तुम चूर्ण ।

हम रम्भावत अस्थिर, लय, गति युक्त परम सुकुमार ।

कोमल काया में भी तुम दृढ़, चला रहीं परिवार । 28 ।

हो भी जाए यदि सुयोग से सन्तति त्याग अरक्षित ।

हम निर्दय बन स्वर्ग लौटतीं रखने रूप सुरक्षित ।

जननी तुम त्यागतीं प्राण भी सन्तति हित रक्षा को ।

कौन प्राप्त कर सकता तव महिमा, उन्नत कक्षा को । 29 ।

नाक में यदि मोदयुत हैं कौन सी उपलब्धि ।

पूर्णता तुम प्राप्त करतीं तैर कर भव अब्धि ।

रज तमोमय लोक में भी सत्व का स्वीकार ।

तुम धरा सी अविचलित रह ढो रहीं गृहभार । 30 ।

यदपि सुरपति धाम में है पूर्णता का राज्य ।

क्या हमें है लभ्य नित वह पूर्णता अविभाज्य ।

वन्द्य तुम हो अभावों के मध्य भी संपूर्ण ।

विविध बाधाएं शिला संकल्प से कर चूर्ण । 31 ।

भ्रमवश बनने चलीं मेनका लें मुझसे सच जान ।

मात्र अरुंधति या अनसूया पातीं हैं सम्मान ।

प्रभु प्रदत्त लावण्य सर्जना में न हुआ सुप्रयुक्त ।

तो कंदर्प उन्हें कर देता सद्यः कुपथ नियुक्त । 32 ।

दामिनी बनने चलीं वे हो गयीं उद्दाम ।

कामिनी ने चिर न पाया जगत में शुभ नाम ।

मानिनी अतिशय न शम को हो सकीं उपलब्ध ।

भामिनी ही प्रणय, यश, धन पा रहीं विश्रब्ध । 33 ।

दिव्य भोग पृथु कीर्ति अनामय वपु अमला चिर कांति ।

दे न सके रम्भा को भी यदि शुभ पूर्णत्व प्रशांति ।

तो है व्यर्थ सजाना अपना क्षणिक कल्पना लोक ।

काया तक परिसीमन, उर को कर सकता न अशोक । 34 ।

कौन बाला त्याग सकती विविध पद जग मध्य ।

किसे गर्हा काम्य, जो है धृतचरित अनवद्य ।

कौन बनना चाहता, नरवासना का केंद्र ।

सुमन माला त्याग किसको ग्राह्य है उरगेन्द्र । 35 ।

देवि ! हम कथमपि नहीं तव हेतु हैं आदर्श ।

मृषा हैं भ्रमजाल प्रसरण हेतु गठित विमर्श ।

किसे वाञ्छित तुंगता से अवतरण गतिमान ।

स्वामिनी से सेविका बन हो किसे अभिमान । 36 ।

कानपुर, उ०प्र० शिव कुमार मिश्र

04-01-2024